

प्रवचन नं. २५५, श्लोक १२१-१२२, गाथा १७९-१८० दिनाङ्क १७-०६-१९७९,
रविवार, ज्येष्ठ कृष्ण ८

समयसार, १२१ कलश का भावार्थ है। शुद्धनय से च्युत होना अर्थात्... क्या कहते हैं? शुद्ध जो आत्मा का निर्विकल्प अनुभव, पर से भिन्न पड़कर, राग से भिन्न पड़कर पर्याय को त्रिकाली द्रव्यस्वभाव में जोड़कर अनुभव हो, शुद्ध अनुभव हो, शुद्ध आनन्द का वेदन हो, उसे शुद्धनय अथवा शुद्धनय का विषय कहते हैं। उससे जब च्युत होता है, स्वभाव के आनन्द का वेदन, परमात्मस्वभाव को जो पहुँचा है, सम्यग्दर्शन से, उसमें से जो कोई च्युत होता है अर्थात् 'मैं शुद्ध हूँ' ऐसे परिणमन से छूटकर... अत्यन्त शुद्ध परिणमन और आनन्द है, ऐसे शुद्ध परिणमन अर्थात् पर्याय। वस्तु तो शुद्ध है, परन्तु जैसी चीज़ है, वैसा परिणमन होना, ऐसे शुद्ध परिणमन से छूटकर अशुद्धरूप परिणमित होना अर्थात् मिथ्यादृष्टि हो जाना। शुद्धनय से च्युत होने की यह व्याख्या है। आहाहा!

अपना प्रभु अनन्त आनन्द की अन्तरंग मिठास में स्वभाव से भरपूर अनन्त गुण, मधुर मीठे अरूपी स्वभाव जिसका मीठा है, ऐसा जिसका अनुभव (हुआ), उसमें से च्युत होना, अर्थात् अशुद्धरूप से होना। शुद्धरूप जो परिणमन था, वह छूटकर और अशुद्ध विकाररूप से परिणमन होकर मिथ्यात्वभाव को प्राप्त होता है। ऐसी बात है।

शुद्धनय से च्युत होना अर्थात् 'मैं शुद्ध हूँ' ऐसे परिणमन से.. मैं शुद्ध हूँ, ऐसा विकल्प करे, ऐसा नहीं। शुद्धनय परिणमन जो है, निर्विकारी वीतरागी परिणमन जो है, वह शुद्ध परिणमन है। उससे छूटकर अशुद्धरूप परिणमित होना अर्थात् मिथ्यादृष्टि हो जाना। अशुद्धरूप से परिणमना अर्थात् ही मिथ्यादृष्टि। आहाहा! क्योंकि आत्मा शुद्धस्वरूप है, पवित्र स्वरूप है। वह तो वीतराग शक्तियों का भण्डार है। उसका परिणमन है, वह तो वीतरागी शुद्ध है। उसमें से भ्रष्ट होना अर्थात् वीतरागी शुद्ध परिणमन से हट जाना और अशुद्ध विकारी परिणमन से परिणमना अर्थात् मिथ्यादृष्टि होना। ऐसा है। मिथ्यादृष्टि हो जाना। यह शुद्धनय से च्युत होना, ऐसा। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि में तो आत्मा के शुद्ध स्वभावरूप से परिणमन की मुख्य दशा है। थोड़ी

अशुद्धता है, वह गौण है। शुद्ध परिणमन की मुख्यता है। आहाहा! उस शुद्ध की मुख्यता वेदन और परिणमन से च्युत होना अर्थात् अशुद्धता के वेदन में आना अर्थात् मिथ्यादृष्टि होना। आहाहा! ऐसी बात है। कहो, लालचन्दजी! ऐसी बात है। बहुत सूक्ष्म! मूल बात बहुत सूक्ष्म है। ऊपर-ऊपर की व्रत, तप, यह सब करे, वह साधारण है। पुण्य बँधता है। यह वस्तु कोई अलौकिक है!

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, जिसके अतीन्द्रिय स्वाद के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन, इन्द्राणी के भोग सड़े हुए कुत्ते और बिल्ली सड़ गयी हो, ऐसे जिसे लगते हैं। अपने सुख के समक्ष जगत के कल्पना के सुख सड़े हुए तिनके जैसे, बिल्ली जैसे लगते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

ऐसा होने पर, जीव के मिथ्यात्व सम्बन्धी.. अर्थात् वह राग नहीं था, ऐसा पहले कहते थे न! समकित्ती को राग नहीं है, ऐसा कहा न? समकित्ती को राग नहीं था, ऐसा कहा था। वह मिथ्यात्व सम्बन्धी का राग उसे नहीं था। यह उसके सम्बन्धी के रागादि उत्पन्न होते हैं। मिथ्यात्व सम्बन्धी रागादि उत्पन्न होते हैं। आहाहा! जिससे द्रव्यास्रव कर्मबन्ध के कारण होते हैं.. इसलिए पुराने द्रव्यास्रव कर्म, वे कर्मबन्ध के कारण होते हैं। उससे अनेक प्रकार के कर्म बँधते हैं।

इस प्रकार यहाँ शुद्धनय से च्युत होने का अर्थ शुद्धता की प्रतीति से (सम्यक्त्व से) च्युत होना समझना चाहिए। भले उसका उपयोग राग में गया हो परन्तु शुद्ध परिणमन से च्युत हुआ नहीं। उपयोग कदाचित् राग में गया हो, तथापि शुद्ध चैतन्य के परिणमन से च्युत नहीं हुआ। दृष्टि ने शुद्ध चैतन्य को पकड़ा है, उससे वह च्युत हुआ नहीं है। यहाँ तो समकित्ती को राग नहीं होता, ऐसा ही कहना है। वह जरा अस्थिरता का है, वह नहीं होता अर्थात् उसे शुद्धस्वरूप का परिणमन ही है। आहाहा! अब ऐसा मार्ग। यह तो शुरुआत का मार्ग ही यह है।

यहाँ उपयोग की अपेक्षा गौण है,.. यह कहा, देखा? रागादि में समकित्ती का उपयोग जाये, यह बात गौण है। चैतन्य के शुद्धस्वरूप की प्रतीति का अनुभव (हुआ है), उससे वह च्युत नहीं होता। उपयोग में राग आवे, वह बात यहाँ गौण की है। आहाहा! और

राग आवे, इसलिए शुद्धस्वरूप से च्युत हुआ है, ऐसा नहीं है। शुद्धस्वरूप से च्युत तो तब कहलाये कि अशुद्ध परिणमन और मिथ्यादृष्टि हो, तब शुद्ध से छूटा कहलाये। शुद्धस्वरूप का भान अन्तर्दृष्टि में है और उपयोग कदाचित् रागादि में जाता है, तथापि वह शुद्धस्वरूप से च्युत हुआ नहीं है। आहाहा!

अज्ञानी शुभराग के उपयोग में है, तथापि वह शुद्धस्वरूप से तो भ्रष्ट ही है। आहाहा! और ज्ञानी को शुभभाव या अशुभभाव, उपयोग में अशुभभाव आवे तो भी शुद्धस्वरूप से च्युत नहीं होता। वहाँ जो दृष्टि है, वहाँ से हटता नहीं। मूल सम्यग्दर्शन का परिणमन च्युत नहीं होता। आहाहा! अशुभराग उपयोग में आया तो भी! और अज्ञानी को शुभराग दया, दान, व्रत, भक्ति का होने पर भी वह मिथ्यादृष्टि है और शुद्धस्वरूप से तो भ्रष्ट ही है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

यहाँ उपयोग की अपेक्षा गौण है, शुद्धनय से च्युत होना अर्थात् शुद्ध उपयोग से च्युत होना, ऐसा अर्थ मुख्य नहीं है;.. क्या कहा? उपयोग की अपेक्षा से शुद्धनय से च्युत होना अर्थात् शुद्ध उपयोग से च्युत होना, शुद्ध उपयोग से हटकर अशुद्ध उपयोग में आ जाये, वह बात यहाँ नहीं है। अशुद्ध उपयोग ज्ञानी को भी आता है। आहाहा! आर्तध्यान, रौद्रध्यान होता है। वह उपयोग अशुद्ध होता है, तथापि स्वरूप की शुद्धता से च्युत नहीं, आनन्द का वेदन तो साथ में है। आहाहा!

शुद्धस्वरूप से च्युत है, वह भले शुभराग के उपयोग में आवे, तो भी वह स्वरूप से तो च्युत है। शुभ में आवे तो भी शुद्धस्वरूप से च्युत है। ज्ञानी अशुभ में आवे तो भी शुद्धस्वरूप से च्युत नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। मूल मार्ग... श्रीमद् में आता है न! 'मूलमार्ग सुन लो जिनवर का रे...' मूल मार्ग की शुरुआत ही कोई अलौकिक है। इसके बिना सब व्यर्थ है। आहाहा!

भगवान पूरा पूर्णानन्द प्रभु, आनन्द का रसकन्द अकेला है। ऐसे अनन्त गुणों का आनन्द, ऐसा रसकसवाला प्रभु, उसका जिसे अन्तर में अनुभव हुआ, वह उपयोग में कदाचित् अशुभभाव आ जाए, तो भी वह शुद्धस्वरूप से च्युत नहीं है। आहाहा! उपयोग की अपेक्षा से उसे च्युत हुआ, ऐसा नहीं कहा जाता। उपयोग भले उसमें है परन्तु लब्धरूप से शुद्ध चैतन्य की प्रतीति और अनुभव लब्धरूप है। समझ में आया?

क्योंकि शुद्धोपयोगरूप रहने का समय अल्प रहता है.. क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अपना शुद्ध आनन्द स्वभाव, उसमें उपयोग अन्दर रहना, ध्येय बनाकर वहाँ उपयोग रहना, उसका काल अल्प है। वह विशेष काल नहीं रह सकता। समझ में आया? शुद्धोपयोगरूप रहने का समय अल्प रहता है.. क्योंकि शुद्धोपयोगरूप, अन्दर आनन्द के उपयोग में रहने का काल बहुत अल्प है। पौन सेकेण्ड के अन्दर तो छठवें गुणस्थान में, उससे आधा सातवें में (आता है), ऐसे नीचे उपयोग तो बहुत थोड़े काल है। यह क्या कहा? छठे गुणस्थान की स्थिति पौन सेकेण्ड के अन्दर, सातवें की उससे आधी है, तो वहाँ सातवें से आधी का इतना उपयोग रहे तो चौथे, पाँचवें में तो उपयोग थोड़ा रहेगा। आहाहा! भले असंख्य समय रहे, परन्तु बहुत थोड़े समय रहता है। इसलिए उपयोग की अपेक्षा से भ्रष्ट होना, ऐसा यहाँ नहीं गिनना। चारित्रदोष में वह अस्थिर हुआ, परन्तु वस्तु में अस्थिर नहीं हुआ। शुद्ध चैतन्य का मूल पकड़ा है। आहाहा!

मात्र अल्प काल शुद्धोपयोगरूप रहकर और फिर उससे छूटकर ज्ञान अन्य ज्ञेयों में उपयुक्त हो तो भी मिथ्यात्व के बिना.. आहाहा! भगवान आत्मा! अपना शुद्ध पवित्रस्वरूप भगवान पूर्ण, उसे ध्येय बनाकर उपयोग वहाँ रहे, वह अल्प काल रहता है। वहाँ से छूटकर उपयोग राग में आता है। है न? उससे छूटकर ज्ञान अन्य ज्ञेयों में उपयुक्त हो.. स्वज्ञेय में जो उपयोग था, वह तो समकित्ती को भी थोड़ा काल रहता है। पश्चात् अन्य ज्ञेयों में उपयुक्त होता है। दूसरे जाननेयोग्य पदार्थ हैं, उनमें उपयोग जाता है। आहाहा! तो भी मिथ्यात्व के बिना.. शुद्धस्वरूप की प्रतीति और अनुभव है, उससे मिथ्यात्व के बिना जो राग का अंश है, वह अभिप्रायपूर्वक नहीं है.. अभिप्रायपूर्वक अर्थात् राग करनेयोग्य है और यह राग है, वह मेरा स्वरूप है—ऐसा अभिप्राय धर्मी को नहीं होता। धर्म ऐसा महँगा किया, ऐसा कोई कहता है। कोई ऐसा कहता था, सोनगढ़वालों ने समकित महँगा किया। महँगा या सस्ता... लोग अपने प्रकार से मानते हों और उससे यह दूसरा निकला, इसलिए (ऐसा कहते हैं कि) महँगा किया। यह किसका कथन है? समयसार, हेमराजजी का (जयचन्दजी का) कथन है। मूल पाठ... आहाहा!

मिथ्यात्व के बिना जो राग का अंश है, वह अभिप्रायपूर्वक नहीं है.. (अर्थात्) रुचिपूर्वक नहीं है। धर्मी को अशुभराग और शुभराग आवे (तो भी उसकी) रुचि नहीं है,

पोषाण नहीं है, पोसाता नहीं है, हेयबुद्धि से आता है। आहाहा! ज्ञानी के मात्र अल्प बन्ध होता है.. उसे अभिप्रायपूर्वक राग नहीं है, इसलिए उसे राग आवे, उसका अल्प बन्धन, अल्प स्थिति पड़ती है। आहाहा! और अल्प बन्ध संसार का कारण नहीं है। वह कहीं संसार, मिथ्यात्व (के) अनन्त संसार का कारण नहीं है। अल्प कोई एकाध-दो भव हों, वे कुछ (गिनती में नहीं हैं)। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि चैतन्य के स्वभाव की दृष्टिवन्त को, अनुभवी को थोड़ा राग आवे, परन्तु वह राग अभिप्रायपूर्वक नहीं है, इसलिए वह अनन्त संसार का कारण नहीं है। वह अल्पस्थिति बँधे, इतना आता है। अन्य ज्ञेय है न? स्वज्ञेय में से हटकर (बाहर आया है)। आहाहा! ज्ञानी के मात्र अल्प बन्ध होता है और अल्प बन्ध संसार का कारण नहीं है। देखो? अल्प बन्ध (उसे गिनते नहीं)। अनन्त संसार का कारण (नहीं है)। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी अनन्त संसार का कारण है। आहाहा!

सूक्ष्म में सूक्ष्म राग का अंश अन्दर है, उसकी जिसे अन्दर मिठास है; राग है, वह मेरा कर्तव्य है, मेरा स्वरूप है—ऐसी शल्य है, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! और ज्ञानी को रौद्रध्यान जैसा भाव भी चौथे-पाँचवें में आवे... आहाहा! तो भी उसका उपयोग भले परज्ञेय में गया, लब्धि, दृष्टि कुछ स्वरूप से हटी नहीं। इसलिए उसका रस और स्थिति अल्प बँधती है। इसलिए यहाँ उपयोग की अपेक्षा मुख्य नहीं है। उपयोग से हट जाना तो संसार है, वह यहाँ मुख्य नहीं है। आहाहा! आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, चैतन्य भगवान की अनुभव में प्रतीति हुई, उसका उपयोग कदाचित् राग में जाये, उसकी यहाँ मुख्यता नहीं है। उसकी यहाँ मुख्यता गिनी नहीं है।

अब यदि उपयोग की अपेक्षा ली जाये.. अब उपयोग की बात आयी। तो इस प्रकार अर्थ घटित होता है:—यदि जीव शुद्धस्वरूप के निर्विकल्प अनुभव से छूटे परन्तु सम्यक्त्व से न छूटे.. आहाहा! शुद्ध चैतन्यस्वभाव परिपूर्ण परमात्मा, मात्र अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, उसकी अन्तर से दृष्टि हुई... आहाहा! वह शुद्ध निर्विकल्प अनुभव से छूटे.. कदाचित् निर्विकल्प अनुभव में से हट जाये। परन्तु सम्यक्त्व से न छूटे.. शुद्धस्वरूप की जो निर्विकल्प प्रतीति हुई है, उसमें से न छूटे तो उसे चारित्रमोह के राग से कुछ

बन्ध होता है। यद्यपि वह बन्ध अज्ञान के पक्ष में नहीं है.. ज्ञानी को थोड़ा राग होता है, परन्तु वह अज्ञान के पक्ष और अज्ञान की धारा में नहीं है। आहाहा! तथापि वह बन्ध तो है ही। भले अज्ञान के पक्ष में नहीं है, परन्तु बन्ध तो है। अभी तो उपयोग की अपेक्षा से लेना है न! पहले उपयोग की अपेक्षा नहीं, उसे बन्ध नहीं, ऐसा कहा; और अब उपयोग जरा अस्थिर होता है, (उसकी बात करते हैं)। आहाहा! इसलिए उसे मिटाने के लिए.. उपयोग में भी राग आवे, उसे मिटाने के लिए धर्मी जीव स्वरूप-सन्मुखता के उपयोग को भी उन्मुख करने का प्रयत्न करता है। आहाहा! लब्धरूप तो प्रगट हुआ है, परन्तु उपयोग जो राग में जाता है, उसे भी अन्तर में सन्मुख करने का प्रयत्न करता है। समझ में आया? अब ऐसी बातें। क्या करना इसमें? करना यह आत्मा क्या है, उस ओर ढल जाना, उसके पक्ष में चढ़ जाना, राग के पक्ष से छूट जाना। आहाहा!

बन्ध तो है ही। इसलिए उसे मिटाने के लिए सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को शुद्धनय से न छूटने का अर्थात् शुद्धोपयोग में लीन रहने का उपदेश है। शुद्ध उपयोग में ही लीन रहना, ऐसा उपदेश है। आहाहा! उसमें दया, दान का विकल्प भी उठाना नहीं। आहाहा! स्वरूप में शुद्ध स्वरूप में एकाकार होकर रहना, उपयोग में बाहर नहीं ले जाना। ऐसा यहाँ उपदेश है।

केवलज्ञान होने पर साक्षात् शुद्धनय होता है। पहले आ गया है। इस ओर है। शुद्धनय तो केवलज्ञान होने पर होता है, इस ओर (१२० कलश के भावार्थ की अन्तिम लाईन में) आया। इस ओर की अन्तिम लाईन। आहाहा! अन्तिम लाईन। यहाँ भी यह कहा, केवलज्ञान होने पर साक्षात् शुद्धनय.. अर्थात् पश्चात् उसे अन्तर में उपयोग को उन्मुख करना, यह नहीं रहता। पूर्ण शुद्ध हो गया है। परमात्मदशा केवलज्ञान (हो गया)। आहाहा!

गाथा-१७९-१८०

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविहं ।
मांस-वसा-रुहिरादी भावे उदराग्नि-संजुत्तो ॥१७९॥
तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं ।
बज्झंते कम्मं ते णय-परिहीणा दु ते जीवा ॥१८०॥

यथा पुरुषेणाहारो गृहीतः परिणमति सोऽनेकविधम् ।
मांस-वसा-रुधिरादीन् भावान् उदराग्नि-संयुक्तः ॥१७९॥
तथा ज्ञानिनस्तु पूर्वं ये बद्धाः प्रत्यया बहुविकल्पम् ।
बध्नन्ति कर्म ते नय-परिहीनास्तु ते जीवाः ॥१८०॥

यदा तु शुद्धनयात् परिहीणो भवति ज्ञानी तदा तस्य रागादिसद्भावात् पूर्वबद्धाः द्रव्यप्रत्ययाः स्वस्य हेतुत्वहेतुसद्भावे हेतुमद्भावस्यानिवार्यत्वात् ज्ञानावरणादिभावैः पुद्गलकर्म बन्धं परिणामयन्ति ।

न चैतदप्रसिद्धं, पुरुषगृहीताहारस्योदराग्निना रसरुधिरमांसादिभावैः परिणामकरणस्य दर्शनात् ॥१७९-१८०॥

अब इसी अर्थ को दृष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं:-

जन से ग्रहित आहार ज्यों, उदराग्नि के संयोग से।
बहुभेद मांस, वसा अरु, रुधिरादि भावों परिणमे ॥१७९॥
त्यों ज्ञानी के भी पूर्वकालनिबद्ध जो प्रत्यय रहे।
बहुभेद बांधे कर्म, जो जीव शुद्धनयपरिच्युत बने ॥१८०॥

गाथार्थ : [यथा] जैसे [पुरुषेण] पुरुष के द्वारा [गृहीतः] ग्रहण किया हुआ [आहारः] जो आहार है [सः] वह [उदराग्निसंयुक्तः] उदराग्नि से संयुक्त होता हुआ

[अनेकविधम्] अनेक प्रकार [मांसवसारुधिरादीन्] मांस, चर्बी, रुधिर आदि [भावान्] भावरूप [परिणमति] परिणमन करता है, [तथा तु] इसी प्रकार [ज्ञानिनः] ज्ञानियों के [पूर्व बद्धाः] पूर्वबद्ध [ये प्रत्ययाः] जो द्रव्यास्रव हैं [ते] वे [बहुविकल्पम्] अनेक प्रकार के [कर्म] कर्म [बध्नन्ति] बांधते हैं - [ते जीवाः] ऐसे जीव [नयपरिहीनाः तु] शुद्धनय से च्युत हैं। (ज्ञानी शुद्धनय से च्युत होवे तो उसके कर्म बाँधते हैं।)

टीका : जब ज्ञानी शुद्धनय से च्युत हो, तब उसके रागादिभावों का सद्भाव होता है इसलिए, पूर्वबद्ध द्रव्यप्रत्यय, अपने (-द्रव्यप्रत्ययों के) कर्मबन्ध के हेतुत्व के हेतु का सद्भाव होने पर हेतुमान भाव का (-कार्यभाव का) अनिवार्यत्व होने से, ज्ञानावरणादि भाव से पुद्गलकर्म को बन्धरूप परिणमित करते हैं। और यह अप्रसिद्ध भी नहीं है (अर्थात् इसका दृष्टान्त जगत् में प्रसिद्ध है-सर्व ज्ञात है); क्योंकि मनुष्य के द्वारा ग्रहण किये गये आहार को जठराग्नि रस, रुधिर, माँस इत्यादिरूप में परिणमित करती है, यह देखा जाता है।

भावार्थ : जब ज्ञानी शुद्धनय से च्युत हो, तब उसके रागादिभावों का सद्भाव होता है, रागादिभावों के निमित्त से द्रव्यास्रव अवश्य कर्मबन्ध के कारण होते हैं और इसलिए कार्मणवर्गणा बन्धरूप परिणमित होती है। टीका में जो यह कहा है कि 'द्रव्यप्रत्यय पुद्गलकर्म को बन्धरूप परिणमित कराते हैं', सो निमित्त की अपेक्षा से कहा है। वहाँ यह समझना चाहिए कि 'द्रव्यप्रत्ययों के निमित्तभूत होने पर कार्मण-वर्गणा स्वयं बन्धरूप परिणमित होती है।'

गाथा - १७९-१८० पर प्रवचन

अब इसी अर्थ को दृष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं:-

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविहं ।

मंस-वसा-रुहिरादी भावे उदरग्नि-संजुत्तो ॥१७९॥

तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं ।

बज्झन्ते कम्मं ते णय-परिहीणा दु ते जीवा ॥१८०॥

णय-परिहीणा.. ऐसा शब्द प्रयोग किया है। व्यवहारनय, ऐसा न कहकर, उसे (शुद्धनय) ही यथार्थ नय कहते हैं। व्यवहारनय तो कथनमात्र है। आहाहा! शुद्धनय से परिहीन, उसे **णय-परिहीणा..** कहा। नीचे (हरिगीत)

जन से ग्रहित आहार ज्यों, उदराग्नि के संयोग से।

बहुभेद मांस, वसा अरु, रुधिरादि भावों परिणमे॥१७९॥

त्यों ज्ञानी के भी पूर्वकालनिबद्ध जो प्रत्यय रहे।

बहुभेद बांधे कर्म, जो जीव शुद्धनयपरिच्युत बने॥१८०॥

यहाँ स्पष्टीकरण करना पड़ा। **णय-परिहीणा** शब्द है न? उसे शुद्धनय परिहीण का स्पष्टीकरण किया, क्योंकि यहाँ शुद्धनय की बात है। नय परिहीण (कहे तो) नय तो व्यवहारनय भी है, परन्तु वह तो कथन (मात्र है)। मूल चीज (नहीं)। मूल चीज, यह शुद्धनय है। आहाहा! और शुद्धनय अर्थात् वास्तव में शुद्ध भूतार्थस्वरूप भगवान पूर्ण। भूतार्थ 'भूयत्थ देसिदो सुद्धनयो' अनन्त गुण के रस से भरपूर भगवान सत्यार्थ, सत्य पदार्थ, सत्य पदार्थ, भूतार्थ-भूत पदार्थ, त्रिकाल, वही शुद्धनय है। फिर कहा कि उस शुद्धनय का विषय है। पहले ऐसा कहा कि वही शुद्धनय है। आहाहा!

जन से ग्रहित आहार ज्यों, उदराग्नि के संयोग से। कहा न? जो जीव शुद्धनयपरिच्युत बने।

टीका : जब ज्ञानी.. धर्मी शुद्ध चैतन्यस्वरूप के आनन्द की परिणति में है... आहाहा! वह शुद्धनय से च्युत हो, तब उसके रागादिभावों का सद्भाव होता है.. तब उसे रागादि होते हैं। पूर्वबद्ध द्रव्यप्रत्यय,.. पश्चात् पूर्व के जो द्रव्य प्रत्यय-जड़ आस्रव हैं, वे अपने (-द्रव्यप्रत्ययों के) कर्मबन्ध के हेतुत्व के हेतु का सद्भाव होने पर.. पूर्व के कर्म के निमित्त में राग-द्वेष निमित्त हुआ। पूर्व कर्म नये के बन्धन और पूर्व कर्म को हेतु हुआ राग-द्वेष। उपयोग में से हट गया और हुआ राग-द्वेष। वह राग-द्वेष कर्म को निमित्त हुआ और निमित्त, पश्चात् नये को निमित्त हुआ। आहाहा!

द्रव्यप्रत्यय, अपने (-द्रव्यप्रत्ययों के) कर्मबन्ध के हेतुत्व के हेतु का सद्भाव होने पर हेतुमान भाव का (-कार्यभाव का).. आहाहा! द्रव्यास्रवों को जब राग-द्वेष

निमित्त हुए, इसलिए उनका कार्य नया बन्धन उसे होता है। वह कार्य हुआ। कारण जड़-कर्म के निमित्त को राग-द्वेष के परिणाम का निमित्त हुआ, इसलिए उसका कार्य नया बन्धन, वह कार्य हुआ। आहाहा! हेतुमान भाव का (-कार्यभाव का) अनिवार्यत्व होने से,.. उसका बन्धन का कार्य होगा ही अनिवार्य है, निवारण नहीं किया जा सकता। आहाहा!

ज्ञानावरणादि भाव से पुद्गलकर्म को बन्धरूप परिणमित करते हैं। जब पुराने कर्म पड़े हैं, परन्तु धर्मी जब शुद्ध उपयोग में से हट जाता है और राग-द्वेष में आता है, तब वे राग-द्वेष पुराने कर्म को निमित्त होते हैं और इसलिए नया कर्म का कार्य होता है। नये कर्म में बन्धनरूप कार्य होता है। आहाहा! और यह अप्रसिद्ध भी नहीं हैं (अर्थात् इसका दृष्टान्त जगत् में प्रसिद्ध है-सर्व ज्ञात है); क्योंकि मनुष्य के द्वारा ग्रहण किये गये आहार को जठराग्नि.. उदराग्नि—पेट में क्षुधा लगी है, उस उदराग्नि को पुरुष ने ग्रहण किया हुआ आहार। उस उदराग्नि से रस, रुधिर, माँस इत्यादिरूप में परिणमित करती है,.. आहार भले अमुक प्रकार का लिया, परन्तु उदराग्नि है, उसके कारण कोई वसारूप, कोई चमड़ीरूप, कोई रक्तरूप भिन्न-भिन्न रूप से उस आहार को परिणमाती है। ग्रहण किये गये आहार को जठराग्नि रस, रुधिर, माँस इत्यादिरूप में परिणमित करती है, यह देखा जाता है। आहाहा! यह क्या कहा?

ज्ञानी को भी जरा (शुद्ध) उपयोग से हट जाए... आहाहा! तो उसे पुराने कर्म में विकार का निमित्तपना मिला, इससे नये कर्म बँधने का कार्य हुआ। दृष्टान्त : जैसे उदराग्नि से आहार ग्रहण किया परन्तु आहार ग्रहण करने के बाद उदराग्नि के कारण भिन्न-भिन्न रस, रुधिर आदि परिणमता है। वैसे उपयोग में राग आया, वह पुराने कर्म को निमित्त हुआ, इससे नये अनेक प्रकार के ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि भिन्न-भिन्न कर्म होते हैं। जैसे उदराग्नि से माँस, खून आदि भिन्न-भिन्न होते हैं, वैसे यह कर्म भी भिन्न-भिन्न बँधते हैं। आहाहा! यह सब विषय बराबर सूक्ष्म है।

मुमुक्षु : अनन्त संसार का बन्ध पड़ता है या अल्प संसार का पड़ता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानावरणादि अनेक प्रकार हैं न! एक ही कहाँ है ? ऐसा कहते हैं। आठ प्रकार हुए न! आयुष्य न हो तो आठ होते हैं। अनेक प्रकार के हैं न! एक ही प्रकार

का कहाँ है ? आहाहा ! ऐसे आहार ग्रहण किया तो एक ही प्रकार के कहीं परिणमन होता है, ऐसा नहीं है। रस, रक्त, चमड़ी इत्यादि रूप (परिणमता है)। आहाहा !

इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप के उपयोग से छूट जाए तो भी उसे अकेले राग के कारण पुराने कर्म को राग का निमित्त मिला, इससे नये अनेक प्रकार के कर्म बँधते हैं। एक ही प्रकार का बँधता है, ऐसा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? क्योंकि मनुष्य के द्वारा ग्रहण किये गये आहार को जठराग्नि रस, .. रस होवे न ? रक्त, माँस, चर्बी इत्यादि इत्यादिरूप में परिणमित करती है, यह देखा जाता है। लो, आहाहा !

भावार्थ : जब ज्ञानी शुद्धनय से च्युत हो, तब उसके रागादिभावों का सद्भाव होता है, .. आहाहा ! पहले तो ऐसा कहा था कि दृष्टि से छूटता नहीं, इसलिए शुद्धनय से छूटता नहीं। अब यहाँ कहा कि शुद्धनय से छूटा, अर्थात् उपयोग में से छूट गया। दृष्टि रही, परन्तु उपयोग में जो ध्यान में उपयोग एकाकार था, वह उपयोग बाह्य में चला गया। उसे भी बन्धन होता है, अब ऐसा कहा। पहले निषेध किया था (कि) सम्यग्दृष्टि को बन्धन और आस्रव है ही नहीं। वह उसके स्वरूप की दृष्टि और अनुभव और उसके भान के कारण (कहा था)। आहाहा !

यहाँ कहा कि सम्यग्दृष्टि को भले दृष्टि सम्यक् रही, ज्ञान सम्यक् है परन्तु निर्विकल्प अन्तर अनुभव में से हट गया और रागादि में भले शुभरागादि में आया, भक्ति आदि में राग आता है न ! तब उस नये कर्म का पुराना कर्मबन्धन (निमित्त) होता है, ऐसा यह निमित्त होता है। आहाहा ! इतना सब याद रखना ! कितने बोल इसमें गये।

भावार्थ : जब ज्ञानी शुद्धनय से च्युत हो तब.. छूटने की व्याख्या (में) अभी उपयोग लिया है। पहला शुद्धनय से छूटे, कहा, तब मिथ्यात्व हुआ था। समझ में आया ? चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा, पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अन्दर है, ऐसा जो भान होता है, उस भान से छूटा नहीं, इसलिए उसे बन्धन है नहीं। अब यहाँ कहते हैं कि निर्विकल्प उपयोग से छूटा परन्तु सम्यग्दर्शन से नहीं छूटा। उपयोग जरा परज्ञेय में गया, परन्तु लब्धरूप अन्दर सम्यग्दर्शन और ज्ञान उस चैतन्य के ऊपर है। आहाहा !

तब उसके रागादिभावों का सद्भाव होता है, .. देखा ? अपेक्षा से कथन है

न ? रागादिभावों के निमित्त से द्रव्यास्रव अवश्य कर्मबन्ध के कारण होते हैं.. इन रागादि के कारण से पुराने कर्म अवश्य नये कर्म का कारण होते हैं । समझ में आया इसमें ? ज्ञानी को भी शुद्ध उपयोग में से हट गया, वीतराग उपयोग है, उसमें से हटकर उपयोग जरा राग में आया तो उस राग के कारण पुराने कर्म, नये बन्ध का कारण, राग के कारण होते हैं । आहाहा ! नहीं तो पुराने कर्म तो राग न करे, तब तो पुराने कर्म चले जायें, निर्जरित हो जायें । इन पुराने कर्मों को रागादि उपयोग हुआ, उसके कारण निमित्त हुआ, कारण मिला, (इसलिए) नये बन्धन का कारण होते हैं । आहाहा ! समझ में आया इसमें ? चिमनभाई !

द्रव्यास्रव अवश्य कर्मबन्ध के कारण होते हैं और इसलिए कार्मणवर्गणा बन्धरूप परिणमित होती है। टीका में जो यह कहा है कि 'द्रव्यप्रत्यय पुद्गलकर्म को बन्धरूप परिणमित कराते हैं',... वह तो निमित्त से कहा । टीका में ऐसा कहा न, द्रव्यास्रव, यह राग हुआ, इसलिए नये कर्म बाँधे—ऐसा कहा न ? 'द्रव्यप्रत्यय पुद्गलकर्म को बन्धरूप परिणमित कराते हैं',... यह निमित्त से बात है । यहाँ राग-द्वेष हुआ, उपयोग अपने में से हटा और परज्ञेय की ओर उपयोग हुआ, इसलिए पुराने कर्म हैं, वे नये कर्म को बाँधते हैं और परिणमाते हैं । परिणमाते हैं अर्थात् नये कर्म को निमित्त होते हैं, ऐसा । परिणमते हैं उनसे । 'पुद्गलकर्म को बन्धरूप परिणमित कराते हैं', सो निमित्त की अपेक्षा से कहा है ।

वहाँ यह समझना चाहिए कि 'द्रव्यप्रत्ययों के निमित्तभूत होने पर..' आहाहा ! पुरान आस्रव जो कर्मबन्ध, रजकण हैं,... पूर्व के सत्ता में पड़े हैं वे । वह 'निमित्तभूत होने पर कार्मण-वर्गणा स्वयं बन्धरूप परिणमित होती है।' ये निमित्त होने पर नये कर्म अपने आप परिणमते हैं । उन्हें ऐसा नहीं कि यह निमित्त था, इसलिए परिणमित होना पड़ा । उस समय परमाणु में कर्म होने की अवस्था से परिणमते हैं । पुराना कर्म उन्हें निमित्त है और पुराने कर्म को राग-द्वेष निमित्त हैं । आहाहा ! आज तो बहुत बोल आड़े-टेढ़े आये । एक ओर कहे कि बन्ध नहीं तथा फिर दूसरी ओर कहे, बन्ध है । किस नय की अपेक्षा है ? (वह समझना चाहिए) ।

ऐसा ही मान ले कि समकित है, इसलिए बस, हमारे अब कुछ बन्ध है नहीं, तब तो फिर मुनिपना लेने की आवश्यकता नहीं रहीं । चारित्र । आहाहा ! अकेले समकित से

हो जाए तो चारित्रदशा... आहाहा! वीतरागता... वन में बाघ और भेड़िया विचरते हैं, वहाँ विचरे ऐसी चारित्रदशा, सीधा समकित होने पर (पूर्ण हुआ जाता होता) तो ऐसी चारित्र (दशा की) आवश्यकता नहीं। चारित्र आवे, चारित्र बिना मुक्ति नहीं होती। यह क्षायिक समकित हो तो भी चारित्र के बिना मुक्ति नहीं है। तीर्थकर जैसे हों, वे क्षायिक सम्यक्त्व लेकर आते हैं। आहाहा!

अष्टपाहुड़ में है कि तीर्थकर जैसे भी वस्त्रसहित हों तो मुक्ति को प्राप्त नहीं होते। ऐसा पाठ है। तीर्थकर जैसे भी मोक्ष उस भव में निश्चित है, तीन ज्ञान लेकर आये हैं, परन्तु वे वस्त्रसहित हैं तो उन्हें भी साधुपना नहीं होता। आहाहा! वस्त्र तो निमित्त है, परन्तु उसके प्रति का जो ममत्वभाव है, वह ममत्वभाव छोटे बिना मुनिपना नहीं आता। आहाहा! सम्यक्त्व हुआ, इससे वह छूट गया, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। मोक्ष का मार्ग तीन हैं। तीन की परिपूर्णता (होवे), तब सच्चा मोक्षमार्ग है। आहाहा!

क्षायिक समकिति श्रेणिक राजा! तीर्थकर क्षायिक सम्यक्त्व लेकर आते हैं। आहाहा! वे भी चारित्र अंगीकार करते हैं। आहाहा! भावचारित्र, हों! द्रव्य, वह तो नग्नपना। द्रव्य से नग्नपना, भाव से चारित्र वीतराग.. वीतराग.. वीतराग.. उपयोग में जो राग था, (उस समय) भले सम्यग्दर्शन था... आहाहा! परन्तु उपयोग में जो राग था, उसे हटाकर उपयोग में वीतरागता प्रगट की, तब उसे चारित्र होता है और तब उसे साक्षात् मुक्ति होती है, अकेले समकित से भी नहीं होती। आहाहा! 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही।' 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही। वह-वह आचरे आत्मार्थीजन सही।' खींचतान न करे, देखो! इस जगह यह कहा है। आहाहा! और वह चारित्र भी वापस सम्यक्त्व बिना नहीं होता। कोई कहे कि चारित्र बिना मुक्ति नहीं है, इसलिए हम यह व्रत और तप लेकर बैठे हैं। सम्यग्दर्शन बिना वह चारित्र होता ही नहीं। आहाहा! वे तो सब बालव्रत और बालतप है। कष्ट सहन करे, उपसर्ग सहन करे, उससे क्या हुआ? उससे अनन्त गुणी शुक्ललेश्या पूर्व में की है। आहाहा! नौवें ग्रैवेयक गया, परन्तु आत्मस्पर्श बिना, आत्मज्ञान बिना वह सब व्यर्थ-इकाई रहित शून्य है। आहाहा! यह आता है, हों! कल आया था। आत्मधर्म, भाई का है न? हुकमचन्दजी का कल आया है। उसमें ये सब डाला है। सामने एक श्लोक डाला है, बहुत अच्छा डाला है, सामने है। ऐसा

कि सम्यग्दर्शन बिना, आत्मा के अनुभव बिना उसके व्रत, तप, पूजा और भक्ति सब व्यर्थ हैं। आहाहा! और सम्यग्दर्शन आने के पश्चात् भी चारित्र तो होवे, चाहिए, वह चारित्र यह व्रत, तपादि नहीं। अन्तर की रमणता का चारित्र हो, तब उसे मुक्ति होती है। आहाहा!

राजकुमार ऐसे चल निकले, देखो न! आहाहा! सम्यक्त्वी थे। मखमल की गद्दी में सोते थे। आहाहा! स्फटिक का मकान था, उसमें सोते थे, वे चल निकले। इस अन्तर की रमणता के लिये। आहाहा! मात्र एक मोरपिच्छी और कमण्डल, बाकी कुछ नहीं होता। आहाहा! जंगल में चले गये। ऐसी चारित्र की अन्तर रमण दशा (प्रगट करने को)। अकेले जंगल में तो अनन्त बार गया। आहाहा! जंगल में गया, इसलिए चारित्र हो गया, ऐसा नहीं है। आहाहा! इस भगवान आत्मा में वीतरागता हुई और वह वीतरागता (पूर्ण) होने के लिए जंगल में जिसका वास होता है। आहाहा! नीचे धरती, ऊपर आकाश, कोई आश्रय नहीं। परमात्मा अन्दर आश्रय है। आहाहा! जिसे सोने-बैठने का स्थान नहीं, पानी की प्याऊ नहीं (कि) तृषा लगे, तब पानी पीना। आहाहा! ऐसी अन्तर की दशा, चारित्रदशा हुए बिना समकित्ती को भी मुक्ति नहीं होती। आहाहा! समकित्ती की महिमा बहुत गाते हैं। महिमा तो बहुत गाये न? (कि) उसे बन्धन नहीं है, उसे आस्रव नहीं है, ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है। यह सब महिमा गाये, परन्तु महिमा गाये किन्तु चारित्र के बिना वह आगे नहीं बढ़ सकता। आहाहा!

अन्तरस्वरूप की रमणता, आनन्द में चरना अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का दल जिसने देखा... आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की खान देखी... आहाहा! जिस खान में से सोना निकले और देखा, वह खान खोदा करे। आहाहा! ऐसे जिस खान में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द आदि भरे हुए हैं, ऐसे भगवान को जिसने जाना और प्रतीति की है, उस प्रतीति में यह आया है कि ऐसे आनन्द के धाम में मैं रमूँगा-स्थिर होऊँगा, उतनी अशुद्धता अथवा कर्मों का नाश होगा। बाकी अपवास-बपवास करूँगा, इसलिए कर्म का नाश होगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! एक ओर हाँ तथा एक ओर ना। क्या अपेक्षा है? आहाहा! खाते-पीते संसार में रहते मुक्ति हो जाती है?

भरत चक्रवर्ती जैसे चल निकले। आहाहा! तीन ज्ञान के धनी थे। खबर थी, भगवान ने कहा था कि इस भव में तेरी मुक्ति है। आहाहा! वे भी छियानवें करोड़ सैनिक,

छियानवें हजार रानियाँ, इन इन्द्रों ने बनाये हुए पाँच बड़े महल छोड़कर चल निकले। अन्तर में चल निकले, हों! अन्तर में आनन्द की रमणता, स्वरूप की रमणता (होवे), उसका नाम चारित्र है। चारित्र, यह कोई व्रत और तप वह कहीं चारित्र नहीं है। आहाहा!

आहाहा! यहाँ कहते हैं कि आत्मा का ज्ञान होने पर भी, सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा का अनुभव, आनन्द का अनुभव, अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ प्रभु का अनुभव होना, इसका नाम समकित है। उसके आनन्द का स्वाद आना... आहाहा! इतने से भी उसकी मुक्ति नहीं होती, कहते हैं। उसका भी अभी राग में थोड़ा अस्थिरता का उपयोग वर्तता है... आहाहा! उसे छोड़कर स्वरूप में जमेगा, अतीन्द्रिय आनन्द के धाम में जम जायेगा, अन्दर स्वरूप में आनन्द में (जम जायेगा), तब चारित्र होगा। इसका नाम चारित्र है, यह व्रत, तप और भक्ति-बक्ति वह कहीं चारित्र नहीं है, वह तो सब शुभराग है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

कलश-१२२

अब, इस सर्व कथन का तात्पर्यरूप श्लोक कहते हैं:-

(अनुष्टुभ्)

इद-मेवात्र तात्पर्य हेयः शुद्ध-नयो न हि।

नास्ति बन्धस्तदत्यागात्त्यागाद्बन्ध एव हि॥१२२॥

श्लोकार्थः : [अत्र] यहाँ [इदम् एव तात्पर्य] यही तात्पर्य है कि [शुद्धनयः न हि हेयः] शुद्धनय त्यागनेयोग्य नहीं है; [हि] क्योंकि [तत् अत्यागत् बन्धः नास्ति] उसके अत्याग से (कर्म का) बन्ध नहीं होता और [तत् त्यागात् बन्धः एव] उसके त्याग से बन्ध ही होता है॥१२२॥

श्लोक - १२२ पर प्रवचन

इद-मेवात्र तात्पर्य हेयः शुद्ध-नयो न हि।

नास्ति बन्धस्तदत्यागात्त्यागाद्बन्ध एव हि॥१२२॥

यह यहाँ कहते हैं, अब, इस सर्व कथन का तात्पर्यरूप श्लोक कहते हैं:- है न? यहाँ यही तात्पर्य है कि शुद्धनय त्यागनेयोग्य नहीं है;.. आहाहा! अर्थात्? आत्मा दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से भी भिन्न चीज़ है। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह तो राग है। आहाहा! उससे भगवान आत्मा अन्दर वीतरागमूर्ति प्रभु, यह शुद्धनय... है? वह शुद्धनय त्यागनेयोग्य नहीं है;.. आहाहा! उस पूर्णानन्द के नाथ को प्रतीति में-श्रद्धा, ज्ञान में लिया है, वह शुद्धनय छोड़नेयोग्य नहीं है। आहाहा! देखो! इसमें यह तात्पर्य डाला।

भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त पवित्र गुण से भरपूर प्रभु (है)। सर्वज्ञ जिनेश्वर ने देखा, ऐसा जो भगवान आत्मा अनन्त आनन्द का दल है, अनन्त शान्ति का सागर है, अनन्त स्वच्छता का भरपूर सागर है, अनन्त-अनन्त ज्ञानादि अतीन्द्रिय गुण का वह सागर है, उसका अन्तर में अनुभव होना, उसे अनुसरणकर होना, उसका नाम तो प्रथम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन और उसके सहित स्थिरता (होना), वह शुद्धनय त्यागनेयोग्य नहीं है;.. आहाहा! व्यवहारनय तो व्रत, तप और भक्ति, वह तो त्यागनेयोग्य है, वह तो राग है। आहाहा! कठिन काम है, बापू! वीतराग का धर्म-जिनेश्वर का धर्म बहुत सूक्ष्म है। यह त्यागनेयोग्य नहीं है। वह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे शुभ हैं, वे तो त्यागनेयोग्य हैं, वह तो राग है। आहाहा! गिरनार और शत्रुंजय की यात्रा-बात्रा, वह सब राग है, वह धर्म नहीं है। आहाहा! वह तो अशुभराग से बचने के लिए आवे, परन्तु है शुभराग; धर्म नहीं।

धर्म तो आत्मा रागरहित जो चीज़ अन्दर है, सच्चिदानन्द प्रभु। सत् अर्थात् कायम शाश्वत् रहा हुआ, आनन्द और ज्ञान से भरपूर प्रभु, उसके सन्मुख में, उसके पक्ष में होकर, उसका अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है, इसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी है। धर्म का पहला सोपान यह है, बाकी सब व्यर्थ है। आहाहा! समझ में आया? जगत को कठिन पड़ता है, क्या करें? एक तो निवृत्ति नहीं मिलती, व्यापारी को व्यापार के कारण निवृत्ति नहीं मिलती, निवृत्त होवे तो ऐसा स्थूल, विपरीत, स्थूल सुनने को मिलता है कि व्रत करो, तप करो, और यह करो, कल्याण होगा। अनन्त काल से मर गया (यह) कर-करके। आहाहा! यह व्रत, तप, दया, दान, पूजा और भक्ति तो राग है, विकल्प है, विकार है।

यहाँ कहते हैं कि अन्दर शुद्धचैतन्य जो है, रागरहित चीज़ है, उसे पकड़कर जो अनुभव किया है, वह छोड़ने योग्य नहीं है। **क्योंकि उसके अत्याग से (कर्म का) बन्ध नहीं होता..** आहाहा! भगवान् पूर्ण शुद्ध चैतन्य को ग्रहण किया, श्रद्धा की, जाना और अन्दर स्थिर हुआ, इसके अत्याग से बन्ध नहीं होता। इसका त्याग न करे तो बन्ध नहीं होता। यह क्या कहा ?

भगवान् आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, जिनेश्वर ने निर्मलानन्द देखा है। अनन्त आनन्द का कन्द! उसे किसी प्रकार से त्यागनेयोग्य नहीं है। आहाहा! है ? **उसके अत्याग से..** त्यागनेयोग्य नहीं है, ऐसा कहकर, वापस उसके अत्याग से अर्थात् उसे छोड़े नहीं तो। शुद्धस्वरूप आनन्द का नाथ, उसे पकड़कर अनुभव करे तो **बन्ध नहीं होता..** आहाहा! तो उसे **(कर्म का) बन्ध नहीं होता..** आहाहा! इसलिए आत्मा के ज्ञान और भान बिना जितने व्रत और तप, भक्ति और यात्रा करे, वे सब संसार, बन्ध का कारण है। उसमें धर्म का अंश नहीं और धर्म का कारण नहीं। कठोर बात है, बापू! आहाहा! पूरा जगत उलझ गया है। कैलाशचन्द्रजी! तुम्हारे लाडलूँ में भी कितनी ही गड़बड़ उठी है। वह सुजानगढ़ क्या है? वहाँ तो बहुत विपरीत है। सुजान-कैसा (नाम कहा)? सुजानगढ़! वहाँ तेरापंथी है, तुलसी, तुम्हारे गाँव का है न? लाडलूँ का! आहाहा!

यह वीतराग का मार्ग अलग है, बापू! सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव कहते हैं कि भाई! तेरे पर अनन्त-अनन्त काल व्यतीत हुए नाथ! तूने अनन्त बार बाह्य त्याग किया, व्रत लिये, नियम लिये, बाह्य साधु हुआ, परन्तु अन्तर में आत्मज्ञान जो चाहिए, आत्मा का स्वाद समकित में लेना चाहिए, वह नहीं लिया और उसके त्याग से ही बन्धन है। उसके अत्याग से बन्धन नहीं। जो स्वरूप है, उसके अत्याग से बन्धन नहीं है; उसके त्याग से बन्धन है। आहाहा! हीरालालजी! आहाहा!

उसके त्याग से बन्ध ही होता है। भाषा देखो! प्रभु! चैतन्यमूर्ति परमात्मा, वीतरागस्वरूप से अन्दर विराजमान है। उसे छोड़कर जो रागादि करे, उसे निश्चय से बन्ध ही होता है। उसे अबन्ध, कोई संवर-निर्जरा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? अन्तर में स्वरूप की दृष्टि का त्याग नहीं, उसे बन्ध नहीं है और जिसे स्वरूप की दृष्टि का त्याग है, वह फिर भले व्रत और तप करके मर जाए, सूख जाए तो (भी) उसे बन्धन है।

तात्पर्य (यह है) कि (शुद्धनय) त्यागनेयोग्य नहीं है और अत्याग से बन्ध नहीं होता और उसके त्याग से बन्ध होता है, दो अर्थ लिये हैं। त्रिकाली शुद्धस्वरूप का श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र में आदर है, उसका त्याग नहीं है, वहाँ बन्ध नहीं है और उसका जहाँ त्याग हुआ, राग में आया, उसे बन्धन है। आहाहा! यह पूरा एक सिद्धान्त (कहा)। शुद्धस्वरूप की रमणता, श्रद्धा-ज्ञान और रमणता (होवे), उसके त्याग से बन्धन है, उसके अत्याग से मुक्ति है। आहाहा! उसके त्याग से शुभभाव में आवे तो बन्धन है। आहाहा!

विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)